अध्याय छः

न्यायपालिका

11103CH06

परिचय

आम तौर पर न्यायालय को विभिन्न व्यक्तियों या निजी संस्थाओं के आपसी विवादों को सुलझाने वाले पंच के रूप में देखा जाता है। लेकिन न्यायपालिका कुछ महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामों को भी अंजाम देती है। न्यायपालिका सरकार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में विश्व के सबसे शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। 1950 से ही न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या और सुरक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में हम पढ़ ही चुके हैं कि अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायपालिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस अध्याय को पढ़ कर आप निम्नलिखित बातों को जान सकेंगे –

- *न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ,*
- *अधिकारों की सुरक्षा में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका,*
- *संविधान की व्याख्या में न्यायपालिका की भूमिका और*
- *भारत की संसद और न्यायपालिका के आपसी संबंध।*

हमें स्वतंत्र न्यायपालिका क्यों चाहिए?

हर समाज में व्यक्तियों के बीच, समूहों के बीच और व्यक्ति समूह तथा सरकार के बीच विवाद उठते हैं। इन सभी विवादों को 'कानून के शासन के सिद्धांत' के आधार पर एक स्वतंत्र संस्था द्वारा हल किया जाना चाहिए। 'कानून के शासन' का भाव यह है कि धनी और गरीब, स्त्री और पुरुष तथा अगड़े और पिछड़े सभी लोगों पर एक समान कानून लागू हो। न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका यह है कि वह 'कानून के शासन' की रक्षा और कानून की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करे। न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करती है, विवादों को कानून के अनुसार हल करती है और यह सुनिश्चित करती है कि लोकतंत्र की जगह किसी एक व्यक्ति या समूह की तानाशाही न ले ले। इसके लिए ज़रूरी है कि न्यायपालिका किसी भी राजनीतिक दबाव से मुक्त हो।

स्वतंत्र न्यायपालिका का क्या अर्थ है? यह स्वतंत्रता कैसे सुनिश्चित की जाती है?

न्यायपालिका की स्वतंत्रता

सीधे-सरल शब्दों में, न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है कि –

- सरकार के अन्य दो अंग-विधायिका और कार्यपालिका-न्यायपालिका के कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाए ताकि वह ठीक ढंग से न्याय कर सकें।
- सरकार के अन्य अंग न्यायपालिका के निर्णयों में हस्तक्षेप न करें।
- न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना कार्य कर सकें।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्छाचारिता या उत्तरदायित्व का अभाव नहीं है। न्यायपालिका देश की लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना का एक हिस्सा है। न्यायपालिका देश के संविधान, लोकतांत्रिक परंपरा और जनता के प्रति जवाबदेह है।

कार्टून बूझें

.... एक प्रसिद्ध वकील होने के नाते आपको यह जानकारी होनी चाहिए कि आपका बरताव, खंड-ग, उप-खंड जी अठारह को भारतीय दंड विधान की धारा नौ (ख) के साथ पढ़ने पर और इस तथ्य के बावजूद....

यह अदालत है। कृपया मुठ्ठी बाँधकर बहस न करें।

अध्याय दो में बताया गया मचल का मामला मुझे याद है। कहा जाता है कि इंसाफ में देरी करना इंसाफ से इन्कार करना है। किसी-न-किसी को इस सिलसिले में कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए।

न्यायपालिका को स्वतंत्रता कैसे दी जा सकती है और उसे सुरक्षित कैसे बनाया जा सकता है? भारतीय संविधान ने अनेक उपायों के द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित की है। न्यायाधीशों की नियुक्तियों के मामले में विधायिका को सम्मिलित नहीं किया गया है। इससे यह सुनिश्चित किया गया कि इन नियुक्तियों में दलगत राजनीति की कोई भूमिका नहीं रहे। न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति को वकालत का अनुभव या कानून का विशेषज्ञ होना चाहिए। उस व्यक्ति के राजनीतिक विचार या निष्ठाएँ उसकी नियुक्ति का आधार नहीं बननी चाहिए।

न्यायाधीशों का कार्यकाल निश्चित होता है। वे सेवानिवृत्त होने तक पद पर बने रहते हैं। केवल अपवाद स्वरूप विशेष स्थितियों में ही न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। इसके अलावा, उनके कार्यकाल को कम नहीं किया जा सकता। कार्यकाल की सुरक्षा के कारण न्यायाधीश बिना भय या भेदभाव के अपना काम कर पाते हैं। संविधान में न्यायाधीशों को हटाने के लिए बहुत कठिन प्रक्रिया निर्धारित की गई है। संविधान निर्माताओं का मानना था कि हटाने की प्रक्रिया कठिन हो, तो न्यायपालिका के सदस्यों का पद सुरक्षित रहेगा।

न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका पर वित्तीय रूप से निर्भर नहीं है। संविधान के अनुसार न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते के लिए विधायिका की स्वीकृति नहीं ली जाएगी। न्यायाधीशों के कार्यों और निर्णयों की व्यक्तिगत आलोचना नहीं की जा सकती। अगर कोई न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया जाता है, तो न्यायपालिका को उसे दंडित करने का अधिकार है। माना जाता है कि इस अधिकार से न्यायाधीशों को सुरक्षा मिलेगी और कोई उनकी नाजायज आलोचना नहीं कर सकेगा। संसद न्यायाधीशों के आचरण पर केवल तभी चर्चा कर सकती है जब वह उनको हटाने के प्रस्ताव पर विचार कर रही हो। इससे न्यायपालिका आलोचना के भय से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से निर्णय करती है।

खुद करें — खुद सीखें

अपनी कक्षा में निम्नलिखित विषयों पर वाद-विवाद का आयोजन करें।

आपकी राय में निम्नलिखित में से कौन-कौन न्यायाधीशों के निर्णय को प्रभावित करते हैं? क्या आप इन्हें ठीक मानते हैं?

- संविधान
- पहले लिए गए फ़ैसले
- अन्य अदालतों की राय
- जनमत
- मीडिया
- कानून की परंपराएँ
- कानून
- समय और कर्मचारियों की कमी
- सार्वजनिक आलोचना का भय
- कार्यपालिका द्वारा कार्रवाई का भय

न्यायाधीशों की नियुक्ति

न्यायाधीशों की नियुक्ति कभी भी राजनीतिक रूप से निर्विवाद नहीं रही है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। यह बात अपने आप में महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश कौन हैं। इससे संविधान की व्याख्या पर फर्क पड़ सकता है। न्यायाधीश का राजनीतिक दर्शन क्या है? सक्रिय और मुखर न्यायपालिका के बारे में उसकी क्या राय है? नियंत्रित और प्रतिबद्ध न्यायपालिका के विषय में उसके क्या विचार हैं? इन सब बातों का प्रभाव लागू किए जाने वाले कानूनों पर पड़ता है। मंत्रिमंडल, राज्यपाल, मुख्यमंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश—ये सभी न्यायिक नियुक्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में वर्षों से परंपरा बन गई है कि सर्वोच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को इस पद पर नियुक्त किया जाएगा। लेकिन इस परंपरा को दो बार तोड़ा भी गया है। 1973 में तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों को छोड़कर न्यायमूर्ति ए एन रे को भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। फिर 1975 में न्यायमूर्ति एच आर खन्ना को पीछे छोड़ते हुए न्यायमूर्ति एम एच बेग की नियुक्ति की गई।

मेरा तो सिर चकरा रहा है और कुछ समझ में नहीं आ रहा। लोकतंत्र में आप प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक की आलोचना कर सकते हैं, न्यायाधीशों की क्यों नहीं? और फिर, यह अदालत की अवमानना क्या बला है? क्या मैं ये सवाल करूँ तो मुझे 'अवमानना' का दोषी माना जाएगा?

मेरा ख्याल है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में मंत्रिपरिषद् की बात को ज़्यादा तरजीह दी जानी चाहिए या फिर यह मान लें कि न्यायपालिका अपनी नियुक्ति आप ही करने वाला निकाय है।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नियुक्तियों के संबंध में वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद् के पास है। फिर मुख्य न्यायाधीश से सलाह का क्या महत्त्व है?

1982 से 1998 के बीच यह विषय बार-बार सर्वोच्च न्यायालय के सामने आया। शुरू में न्यायालय का विचार था कि मुख्य न्यायाधीश की भूमिका पूरी तरह से सलाहकार की है। लेकिन बाद में न्यायालय ने माना कि मुख्य न्यायाधीश की सलाह राष्ट्रपति को ज़रूर माननी चाहिए। आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय ने एक नई व्यवस्था की। इसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अन्य चार वरिष्ठतम् न्यायाधीशों की सलाह से कुछ नाम प्रस्तावित करेगा और इसी में से राष्ट्रपति नियुक्तियाँ करेगा। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने नियुक्तियों की सिफारिश के संबंध में सामूहिकता का सिद्धांत स्थापित किया। इसी कारण आजकल नियुक्तियों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों के समूह का ज़्यादा प्रभाव है। इस तरह न्यायपालिका की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय और मंत्रिपरिषद् महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायाधीशों को पद से हटाना

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाना काफी कठिन है। कदाचार साबित होने अथवा अयोग्यता की दशा में ही उन्हें पद से हटाया जा सकता है। न्यायाधीश के विरुद्ध आरोपों पर संसद के एक विशेष बहुमत की स्वीकृति ज़रूरी होती है। क्या आप को याद है कि यह विशेष बहुमत क्या है? इसे हमने चुनाव वाले अध्याय में पढ़ा है। इससे स्पष्ट है कि न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया अत्यंत कठिन है और जब तक संसद के सदस्यों में आम सहमति न हो तब तक किसी न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सकता। यह भी गौरतलब है कि जहाँ उनकी नियुक्ति में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका है वहीं उनको हटाने की शक्ति विधायिका के पास है। इसके द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बची रहे और शक्ति-संतुलन भी बना रहे। अब तक संसद के पास

किसी न्यायाधीश को हटाने का केवल एक प्रस्ताव विचार के लिए आया है। इस मामले में हालाँकि दो-तिहाई सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया, लेकिन न्यायाधीश को हटाया नहीं जा सका क्योंकि प्रस्ताव पर सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत प्राप्त न हो सका।

न्यायाधीश को हटाने का असफल प्रयास

1991 में पहली बार संसद के 108 सदस्यों ने सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को हटाने के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए। न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी पर आरोप था कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में उन्होंने वित्तीय अनियमितता की। संसद ने उन्हें हटाने की प्रक्रिया शुरू की। इसके एक वर्ष बाद 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक उच्च स्तरीय जाँच समिति ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहते 'सार्वजनिक धन का निजी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने और संवैधानिक नियमों की धज्जी उड़ाने के कारण नैतिक पतन... तथा पद का जान-बूझकर गंभीर दुरुपयोग करने का दोषी पाया। इतने कठोर आरोपों के बाद भी रामास्वामी पर संसद में महाभियोग सिद्ध न हो सका। महाभियोग के प्रस्ताव के पक्ष में सदन में मौजूद और मतदान करने वाले सदस्यों के ज़रूरी दो-तिहाई मत तो पड़े लेकिन काँग्रेस पार्टी ने सदन में मतदान में भाग नहीं लिया। अतः प्रस्ताव को सदन की कुल सदस्य संख्या के आधे का समर्थन नहीं मिल पाया।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- न्यायपालिका की स्वतंत्रता क्यों महत्त्वपूर्ण है?
- क्या आपकी राय में कार्यपालिका के पास न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति होनी चाहिए?
- यदि आप से न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में बदलाव करने का सुझाव देने को कहा जाय तो आप क्या सुझाव देंगे?

न्यायपालिका की संरचना

भारतीय संविधान एकीकृत न्यायिक व्यवस्था की स्थापना करता है। इसका अर्थ यह है कि विश्व के अन्य संघीय देशों के विपरीत भारत में अलग से प्रांतीय स्तर के न्यायालय नहीं हैं। भारत में न्यायपालिका की संरचना पिरामिड की तरह है जिसमें सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय फिर उच्च न्यायालय तथा सबसे नीचे जिला और अधीनस्थ न्यायालय है। (नीचे चित्र में देखें) नीचे के न्यायालय अपने ऊपर के न्यायालयों की देखरेख में काम करते हैं।
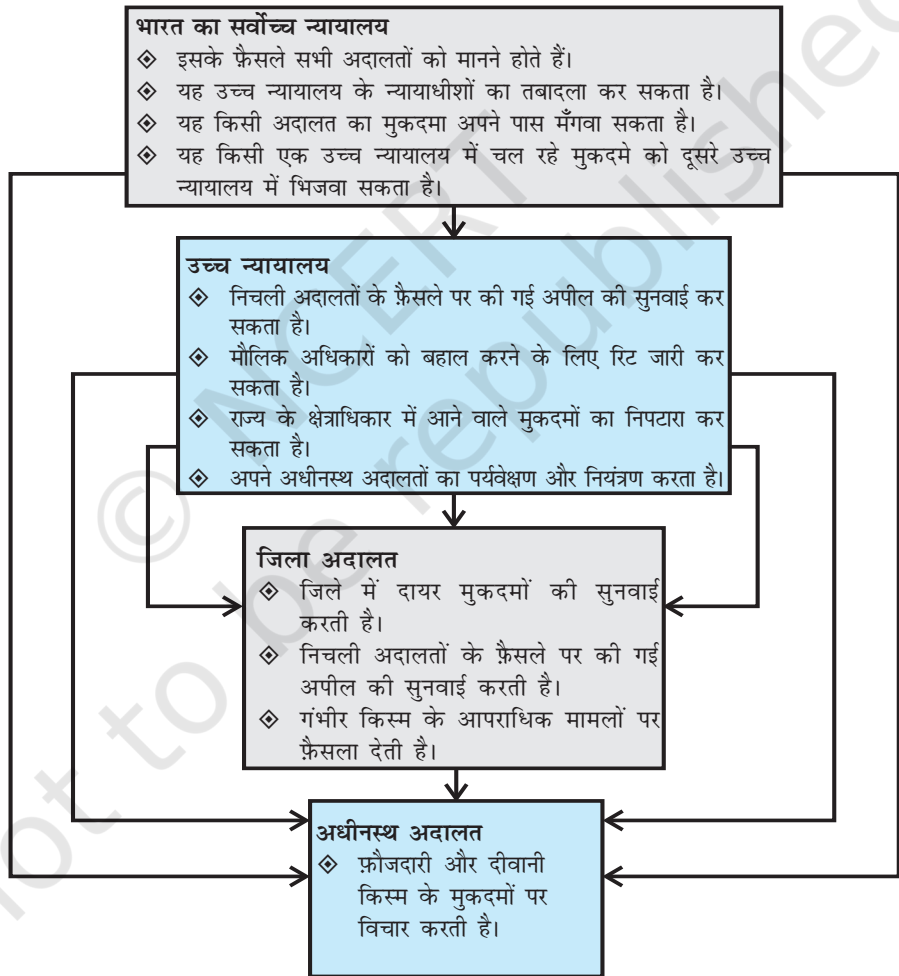
सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

भारत का सर्वोच्च न्यायालय विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है। लेकिन वह संविधान द्वारा तय की गई सीमा के अंदर ही काम करता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्य और उत्तरदायित्व संविधान में दर्ज हैं। सर्वोच्च न्यायालय को खास किस्म का क्षेत्राधिकार प्राप्त है।
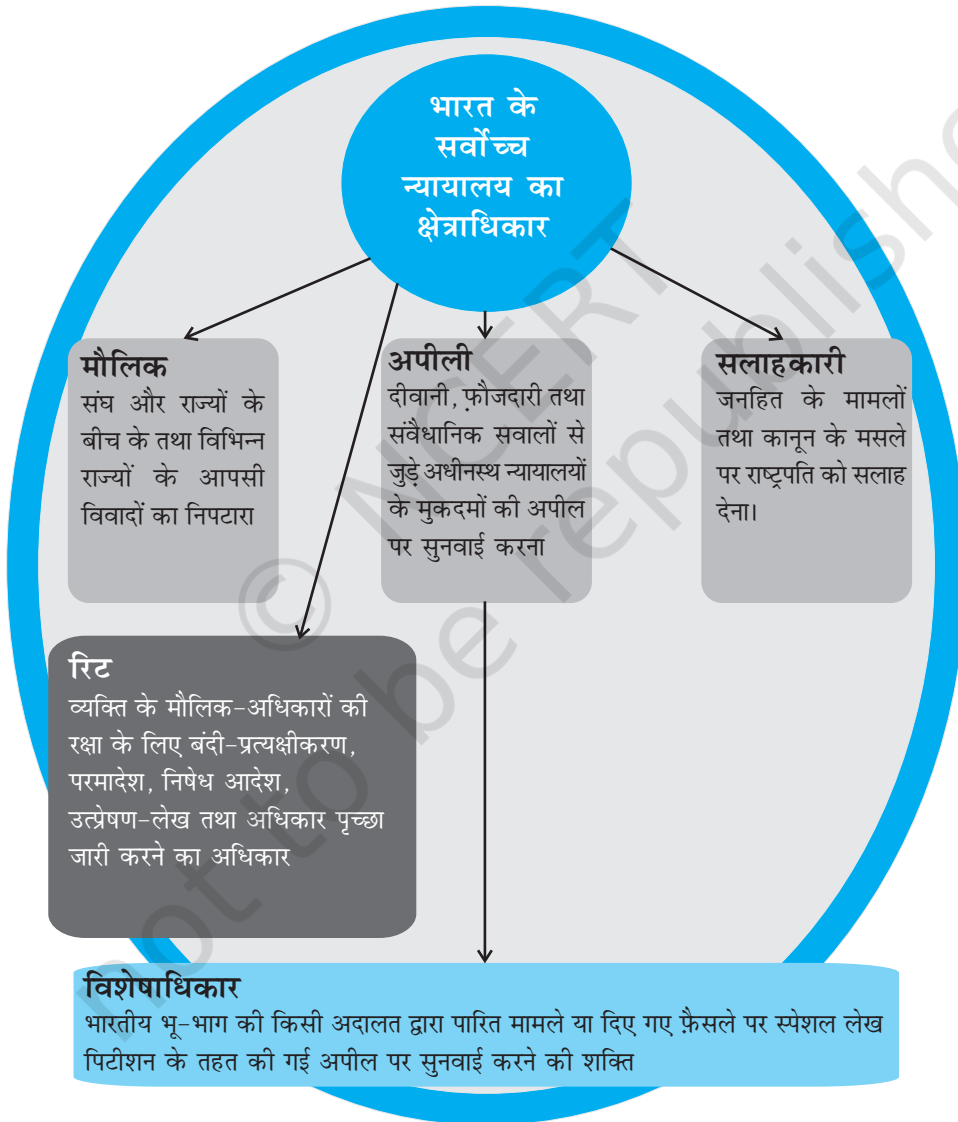
मौलिक क्षेत्राधिकार

मौलिक क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि कुछ मुकदमों की सुनवाई सीधे सर्वोच्च न्यायालय कर सकता है। ऐसे मुकदमों में पहले निचली अदालतों में सुनवाई ज़रूरी नहीं। ऊपर के चित्र में आपने देखा कि संघीय संबंधों से जुड़े मुकदमे सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का मौलिक क्षेत्राधिकार उसे संघीय मामलों से संबंधित सभी विवादों में एक अंपायर या निर्णायक की भूमिका देता है। किसी भी संघीय व्यवस्था में केंद्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों में परस्पर कानूनी विवादों का उठना स्वाभाविक है। इन विवादों को हल करने की ज़िम्मेदारी सर्वोच्च न्यायालय की है। इसे मौलिक क्षेत्राधिकार इसलिए कहते हैं क्योंकि इन मामलों को केवल सर्वोच्च न्यायालय ही हल कर सकता है। इनकी सुनवाई न तो उच्च न्यायालय और न ही अधीनस्थ न्यायालयों में हो सकती है। अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सर्वोच्च न्यायालय न केवल विवादों को सुलझाता है बल्कि संविधान में दी गई संघ और राज्य सरकारों की शक्तियों की व्याख्या भी करता है।

'रिट' संबंधी क्षेत्राधिकार

जैसा कि आपने मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में पढ़ा कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर कोई भी व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय अपने विशेष आदेश रिट के रूप में दे सकता है। उच्च न्यायालय भी रिट जारी कर सकते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है उसके पास विकल्प है कि वह चाहे तो उच्च न्यायालय या सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। इन रिटों के माध्यम से न्यायालय कार्यपालिका को कुछ करने या न करने का आदेश दे सकता है।

अपीली क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम न्यायालय है। कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। लेकिन उच्च न्यायालय को यह प्रमाणपत्र देना पड़ता है कि वह मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने लायक है अर्थात् उसमें संविधान या कानून की व्याख्या करने जैसा कोई गंभीर मामला उलझा है। अगर फ़ौजदारी के मामले में निचली अदालत किसी को फाँसी की सज़ा दे दे, तो उसकी अपील सर्वोच्च या उच्च न्यायालय में की जा सकती है। यदि किसी मुकदमे में उच्च न्यायालय अपील की आज्ञा न दे तब भी सर्वोच्च न्यायालय के पास यह शक्ति है कि वह उस मुकदमे में की गई अपील

को विचार के लिए स्वीकार कर ले। अपीली क्षेत्राधिकार का मतलब यह है कि सर्वोच्च न्यायालय पूरे मुकदमे पर पुनर्विचार करेगा और उसके कानूनी मुद्दों की दुबारा जाँच करेगा। यदि न्यायालय को लगता है कि कानून या संविधान का वह अर्थ नहीं है जो निचली अदालतों ने समझा तो सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णय को बदल सकता है तथा इसके साथ उन प्रावधानों की नई व्याख्या भी दे सकता है।

उच्च न्यायालयों को भी अपने नीचे की अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपीली क्षेत्राधिकार है।

सलाह संबंधी क्षेत्राधिकार

मौलिक और अपीली क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार भी है। इसके अनुसार, भारत का राष्ट्रपति लोकहित या संविधान की व्याख्या से संबंधित किसी विषय को सर्वोच्च न्यायालय के पास परामर्श के लिए भेज सकता है। लेकिन न तो सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी विषय पर सलाह देने के लिए बाध्य है और न ही राष्ट्रपति न्यायालय की सलाह मानने को।

फिर सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श देने की शक्ति की क्या उपयोगिता है? इसकी दो मुख्य उपयोगिताएँ हैं– पहली, इससे सरकार को छूट मिल जाती है कि किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर कार्रवाई करने से पहले वह अदालत की कानूनी राय जान ले। इससे बाद में कानूनी विवाद से बचा जा सकता है। दूसरी, सर्वोच्च न्यायालय की सलाह मानकर सरकार अपने प्रस्तावित निर्णय या विधेयक में समुचित संशोधन कर सकती है।

क्या यह बात अपने आप में मज़ेदार नहीं लगती कि सलाह देना, सलाह देने वाले की मर्जी पर और उसको मानना या न मानना, सलाह सुनने वाले की मर्जी पर निर्भर है। मैं तो यही सोचकर चल रहा था कि अदालतें फ़ैसला सुनाती हैं जिन्हें सबको मानना होता है।

अनुच्छेद 137 "…उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा सुनाए गए निर्णय या दिए गए आदेश का पुनरावलोकन करने की शक्ति होगी।"

अनुच्छेद 144 "भारत के राज्य-क्षेत्र के सभी सिविल और न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता से कार्य करेंगे।"

सर्वोच्च न्यायालय को अपने ही फ़ैसले को बदलने की इजाज़त क्यों दी गई है? क्या ऐसा यह मानकर किया गया है कि अदालत से भी चूक हो सकती है? क्या यह संभव है कि फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए जो खंडपीठ बैठी है उसमें वह न्यायाधीश भी शामिल हो, जो फ़ैसला सुनाने वाली खंडपीठ में था?

पिछले पृष्ठ पर दिए गए अनुच्छेदों को पढ़ें। ये अनुच्छेद हमें भारत के न्यायपालिका की एकीकृत प्रकृति और सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों को समझने में मदद करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले भारतीय भू-भाग के अन्य सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी हैं। उसके द्वारा दिए गए निर्णय संपूर्ण देश में लागू होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपने निर्णयों से बाध्य नहीं है और कभी भी उसकी समीक्षा कर सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय की अवमानना के मामले भी वे स्वयं ही देखता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

'निम्नलिखित दो सूचियों को सुमेलित करें।

(क) बिहार और भारत सरकार के मध्य विवाद की सुनवाई कौन करेगा?	(1) उच्च न्यायालय
	(2) परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार
(ख) हरियाणा के जिला न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील कहाँ की जाएगी?	(3) न्यायिक पुनर्निरीक्षण
	(4) मौलिक क्षेत्राधिकार
	(5) सर्वोच्च न्यायालय
(ग) एकीकृत न्यायपालिका	(6) एकल संविधान
(घ) किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करना	

न्यायिक सक्रियता

क्या आपने न्यायिक सक्रियता अथवा जनहित याचिका के बारे में सुना है? आजकल न्यायपालिका पर चर्चा में इन दोनों शब्दों का अकसर प्रयोग होता है। अनेक लोगों का मानना है कि इन दोनों ने न्यायपालिका के कार्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर उन्हें पहले से अधिक जनोन्मुखी बना दिया है।

भारत में न्यायिक सक्रियता का मुख्य साधन जनहित याचिका या सामाजिक व्यवहार याचिका (Social Action Litigation) रही है। आखिर

कार्टून बूझें

क्या आप जानते हैं कि हाल के दिनों में न्यायपालिका ने 'बंद' और 'हड़ताल' को अपने फ़ैसले में अवैध करार दिया है।

'जनहित याचिका' है क्या? कब और कैसे इसकी शुरुआत हुई? कानून की सामान्य प्रक्रिया में कोई व्यक्ति तभी अदालत जा सकता है जब उसका कोई व्यक्तिगत नुकसान हुआ हो। इसका मतलब यह है कि अपने अधिकार का उल्लंघन होने पर या किसी विवाद में फँसने पर कोई व्यक्ति इंसाफ पाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटा सकता है। 1979 में इस अवधारणा में बदलाव आया। 1979 में इस बदलाव की शुरुआत करते हुए न्यायालय ने एक ऐसे मुकदमे की सुनवाई करने का निर्णय लिया जिसे पीड़ित लोगों ने नहीं बल्कि उनकी ओर से दूसरों ने दाखिल किया था। चूँकि इस मामले में जनहित से संबंधित एक मुद्दे पर विचार हो रहा था अत: इसे और ऐसे ही अन्य अनेक मुकदमों को जनहित याचिकाओं का नाम दिया गया। उसी समय सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के अधिकार से संबंधित मुकदमे पर भी विचार किया। इससे ऐसे मुकदमों की बाढ़-सी आ गई जिसमें जन सेवा की भावना रखने वाले नागरिकों तथा स्वयंसेवी संगठनों ने अधिकारों की रक्षा, गरीबों के जीवन को और बेहतर बनाने, पर्यावरण की सुरक्षा और लोकहित से जुड़े अनेक मुद्दों पर न्यायपालिका से हस्तक्षेप की माँग की। जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे प्रभावी साधन हो गई है।

मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है कि जनहित याचिका का असली मतलब होता है 'निजी हित की याचिका'। ऐसा क्यों भला?

किसी के द्वारा मुकदमा करने पर उस मुद्दे पर विचार करने के बजाय न्यायपालिका ने अखबार में छपी खबरों और डाक से प्राप्त शिकायतों को आधार बना कर उन पर विचार करना शुरू कर दिया। इस तरह न्यायपालिका की यह नई भूमिका न्यायिक सक्रियता के रूप में लोकप्रिय हुई।

कुछ प्रारंभिक जनहित याचिकाएँ

- 1979 में समाचार पत्रों में विचाराधीन कैदियों के बारे में कुछ खबरें छपीं। बिहार की जेलों में कैदियों को काफी लंबी अवधि से बंदी बना कर रखा जा रहा था। जिन अपराधों के लिए उन्हें गिरफ़्तार किया गया था, यदि उसमें उन्हें सज़ा हो जाती तो भी वे उतनी लंबी अवधि के लिए कैद नहीं किए जा सकते थे। इस खबर को आधार बना कर एक वकील ने एक याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय में यह मुकदमा चला। यह पहली जनहित याचिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। इस मुकदमे को हुसैनारा खातून बनाम बिहार सरकार के नाम से जाना जाता है।
- 1980 में तिहाड़ जेल के एक बंदी ने सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश कृष्णा अय्यर को एक पत्र भेजा। इसमें बंदियों को दी जाने वाली शारीरिक यातनाओं का वर्णन किया गया था। न्यायाधीश ने उसे ही एक याचिका मान लिया। यद्यपि बाद में न्यायालय ने पत्रों को याचिका के रूप में स्वीकार करने की प्रथा समाप्त कर दी, लेकिन यह मुकदमा 'सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1980)' के नाम से शुरुआती जनहित याचिका के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायालय ने अधिकारों का दायरा बढ़ा दिया। शुद्ध हवा-पानी और अच्छा जीवन पाना पूरे समाज का अधिकार है। न्यायालय का मानना था कि समाज के सदस्य के रूप में, अधिकारों के उल्लंघन पर व्यक्तियों को इंसाफ की गुहार लगाने का अधिकार है।

इसके अतिरिक्त 1980 के बाद जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता के द्वारा न्यायपालिका ने उन मामलों में भी रूचि दिखाई जहाँ समाज के कुछ वर्गों के लोग आसानी से अदालत की शरण नहीं ले सकते। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए न्यायालय ने जन सेवा की भावना से भरे नागरिक, सामाजिक संगठन और वकीलों को समाज के ज़रूरतमंद और गरीब लोगों की ओर से याचिकाएँ दायर करने की इज़ाज़त दी।

यह बात ज़रूर याद रहे कि गरीबों की समस्याएँ ऐसे लोगों की समस्याओं से गुणात्मक रूप से अलग हैं जिन पर अब तक अदालत का ध्यान रहा है। ...गरीबों के प्रति इंसाफ का अलग नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है। यदि हम गरीबों के मामले में आँख मूँदकर इंसाफ की कोई प्रतिकूल प्रक्रिया अपनाते हैं, तो वे कभी भी अपने मौलिक अधिकारों का इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे।

(न्यायमूर्ति भगवती – बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत सरकार, 1984)

खुद करें — खुद सीखें

जनहित याचिका के माध्यम से दायर कम-से-कम एक मुकदमे का ब्यौरा जुटाएँ और पता करें कि किस प्रकार उस मामले से जनता के हित की रक्षा हुई।

न्यायिक सक्रियता का हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर बहुत प्रभाव पड़ा। इससे न केवल व्यक्तियों बल्कि विभिन्न समूहों को भी अदालत जाने का अवसर मिला। इसने न्याय व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाया और कार्यपालिका उत्तरदायी बनने पर बाध्य हुई चुनाव प्रणाली को भी इसने ज़्यादा मुक्त और निष्पक्ष बनाने का प्रयास किया। न्यायालय ने चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों को अपनी संपत्ति, आय और शैक्षणिक योग्यताओं के संबंध में शपथपत्र देने का निर्देश दिया, जिससे लोग सही जानकारी के आधार पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें।

जनहित याचिकाओं की बढ़ती संख्या और सक्रिय न्यायपालिका के विचार का एक नकारात्मक पहलू भी है। इससे न्यायालयों में काम का बोझ बढ़ा है। दूसरे, न्यायिक सक्रियता से विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों के बीच का अंतर धुँधला हो गया है। न्यायालय उन समस्याओं में उलझ गया जिसे कार्यपालिका को हल करना चाहिए।

मेरा खयाल है कि न्यायिक सक्रियता का रिश्ता कार्यपालिका और विधायिका को यह बताने से है कि उन्हें क्या करना चाहिए। यदि विधायिका और कार्यपालिका ने भी फ़ैसला सुनाना शुरू कर दिया तो फिर क्या होगा?

उदाहरण के लिए, वायु और ध्वनि प्रदूषण दूर करना, भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करना या चुनाव सुधार करना वास्तव में न्यायपालिका के काम नहीं है। ये सभी कार्य विधायिका की देखरेख में प्रशासन को करना चाहिए। इसलिए कुछ लोगों का मानना है कि न्यायिक सक्रियता से सरकार के तीनों अंगों के बीच पारस्परिक संतुलन रखना बहुत मुश्किल हो गया है। लोकतांत्रिक शासन का आधार यह है कि सरकार का हर अंग एक-दूसरे की शक्तियों और क्षेत्राधिकार का सम्मान करें। न्यायिक सक्रियता से इस लोकतांत्रिक सिद्धांत को आघात पहुँच सकता है।

आप एक न्यायाधीश हैं

नागरिकों का एक समूह जनहित याचिका के माध्यम से न्यायालय जाकर प्रार्थना करता है कि वह शहर की नगरपालिका के अधिकारियों को झुग्गी-झोपड़ियाँ हटाने और शहर को सुंदर बनाने का काम करने के आदेश दे, ताकि शहर में पूँजी निवेश करने वालों को आकर्षित किया जा सके। उनका तर्क है कि ऐसा करना जनहित में है। झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों का पक्ष है कि ऐसा करने पर उनके 'जीवन के अधिकार' का हनन होगा। उनका तर्क है कि जनहित के लिए साफ-सुथरे शहर के अधिकार से ज़्यादा जीवन का अधिकार महत्त्वपूर्ण है।

कल्पना करें कि आप एक न्यायाधीश हैं। आप एक निर्णय लिखें और तय करें कि इस 'जनहित याचिका' में जनहित का मुद्दा है या नहीं ?

न्यायपालिका और अधिकार

हम पहले ही देख चुके हैं कि न्यायपालिका को व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया है। संविधान ऐसी दो विधियों का वर्णन करता है जिससे सर्वोच्च न्यायालय अधिकारों की रक्षा कर सके–

- पहला, यह अनेक रिट; जैसे– बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश आदि जारी करके मौलिक अधिकारों को फिर से स्थापित कर सकता है। (अनुच्छेद 32)। उच्च न्यायालयों को भी ऐसी रिट जारी करने की शक्ति है (अनुच्छेद 226)।
- दूसरा, सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को गैर-संवैधानिक घोषित कर उसे लागू होने से रोक सकता है (अनुच्छेद 13)।

2019-2020

ये दोनों प्रावधान एक ओर सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकार के संरक्षक तथा दूसरी ओर संविधान के व्याख्याकार के रूप में स्थापित करते हैं। उपर्युक्त प्रावधानों में दूसरा प्रावधान न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करता है।

सर्वोच्च न्यायालय की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति संभवतया न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति है। न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून की संवैधानिकता जाँच सकता है और यदि वह संविधान के प्रावधानों के विपरीत हो, तो न्यायालय उसे गैर-संवैधानिक घोषित कर सकता है। संविधान में कहीं भी न्यायिक पुनरावलोकन शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। लेकिन भारत में संविधान लिखित है और इसमें दर्ज है कि मूल अधिकारों के विपरीत होने पर सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून को निरस्त कर सकता है। इन तथ्यों के कारण भारत के संविधान में 'न्यायिक पुनरावलोकन' शब्द का प्रयोग न होने पर यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है।

इसके अलावा हमने सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का अध्ययन करते समय देखा कि संघीय संबंधों के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। ऐसा करके वह किसी भी कानून को संविधान में निहित शक्ति के बँटवारे की योजना के विरुद्ध होने से रोकता है। मान लीजिए कि केंद्र सरकार कोई कानून बनाए और कुछ राज्यों को ऐसा लगे कि इस कानून का विषय तो राज्य सूची में है। तब वे सर्वोच्च न्यायालय जा सकते हैं और यदि न्यायालय उनसे सहमत हो, तो वह उस कानून को असंवैधानिक घोषित कर सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा ऐसे किसी भी कानून का परीक्षण कर सकता है, जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो या संविधान में शक्ति-विभाजन योजना के प्रतिकूल हो। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति राज्यों की विधायिका द्वारा बनाए कानूनों पर भी लागू होती है।

मेरा खयाल है कि मैं न्यायाधीश ही बनूँ तो अच्छा है! फिर मुझे चुनाव और जन-समर्थन की चिंता नहीं करनी पड़ेगी और तब भी मेरे पास बहुत-सी शक्तियाँ होंगी!

रिट जारी करने की और न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय को अत्यंत शक्तिशाली बना देती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का मतलब यह हुआ कि न्यायपालिका विधायिका द्वारा पारित कानूनों की और संविधान की व्याख्या कर सकती है। अनेक लोगों का मानना है कि इसके द्वारा न्यायपालिका प्रभावी ढंग से संविधान की रक्षा करती है और नागरिकों के अधिकारों की भी रक्षा करती है। जनहित याचिकाओं ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने की न्यायपालिका की शक्ति में बढ़ोत्तरी की है।

क्या आप जानते हैं कि और भी अनेक देशों में जनहित याचिकाएँ धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रही हैं? विश्व के अनेक न्यायालयों खासतौर से दक्षिण एशिया और अफ्रीका में भारत की ही भाँति न्यायिक सक्रियता का प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका के संविधान में जनहित याचिका को मौलिक अधिकारों की सूची में सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में अब नागरिक का यह मौलिक अधिकार है कि वह संवैधानिक न्यायालय के सामने व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन का मामला उठा सके।

क्या आपको याद है कि अधिकार से संबंधित अध्याय में हमने शोषण के विरुद्ध अधिकार का उल्लेख किया था। यह अधिकार बंधुआ मज़दूरी, लोगों की खरीद-फरोख्त और खतरनाक कामों में बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि जिन लोगों के अधिकारों का उल्लंघन होता है, वे अदालत का दरवाज़ा कैसे खटखटाएँ? जनहित याचिकाओं और न्यायिक सक्रियता से न्यायालयों के लिए यह संभव हो पाया है कि वे ऐसे उल्लंघनों के मामले पर विचार कर सकें। इससे न्यायालय ने अनेक मुद्दों पर विचार किया, जैसे– जेल के अंदर पुलिस द्वारा कैदियों की आँखें फोड़ना, पत्थर की खदानों में काम करने की अमानवीय दशा, बच्चों का यौन-शोषण आदि। इस प्रवृत्ति ने गरीब व पिछड़े वर्ग के लोगों के अधिकारों को अर्थपूर्ण बना दिया है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

- न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग कब करता है?
- न्यायिक पुनरावलोकन और रिट में क्या फर्क है?

न्यायपालिका और संसद

न्यायपालिका ने अधिकार के मुद्दे पर तो सक्रियता दिखाई ही है, राजनैतिक व्यवहार-बरताव से संविधान को ठेंगा दिखाने की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया है। इसी कारण जो विषय पहले न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे में नहीं थे उन्हें भी अब इस दायरे में ले लिया गया है, जैसे– राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियाँ।

ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने न्याय की स्थापना के लिए कार्यपालिका की संस्थाओं को निर्देश दिए। जैसे उसने हवाला मामले, नरसिंह राव मामले और पेट्रोल पंपों के अवैध आबंटन जैसे अनेक मामलों में सीबीआई (केंद्रीय जाँच ब्यूरो) को निर्देश दिया कि वह भ्रष्ट राजनेताओं और नौकरशाहों के विरुद्ध जाँच करे। आपने इनमें से कुछ के बारे में सुना होगा। इनमें से कई उदाहरण न्यायिक सक्रियता के परिणाम हैं।

भारतीय संविधान शक्ति के सीमित बँटवारे, अवरोध तथा संतुलन के एक सुंदर सिद्धांत पर आधारित है। इसका मतलब यह है कि सरकार के प्रत्येक अंग का एक स्पष्ट कार्य क्षेत्र है। संसद कानून बनाने और संविधान का संशोधन करने में सर्वोच्च है, कार्यपालिका उन्हें लागू करने तथा न्यायपालिका विवादों को सुलझाने और यह सुनिश्चित करने में सर्वोच्च है कि क्या बनाए गए कानून संविधान के अनुकूल हैं। इस स्पष्ट कार्य विभाजन के बावजूद संसद और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव भारतीय राजनीति की विशेषता रही है।

हमने संपत्ति के अधिकार और संसद की संविधान को संशोधित करने की शक्ति के संबंध में संसद और न्यायपालिका के बीच हुए टकराव का पीछे उल्लेख किया है। आइए इसे एक बार फिर दुहरा लें।

संविधान लागू होने के तुरंत बाद संपत्ति के अधिकार पर रोक लगाने की संसद की शक्ति पर विवाद खड़ा हो गया। संसद संपत्ति रखने के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगाना चाहती थी जिससे भूमि-सुधारों को लागू किया जा सके। न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। संसद ने तब संविधान को संशोधित करने का प्रयास किया। लेकिन न्यायालय ने कहा कि संविधान के संशोधन के द्वारा भी मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता।

संसद और न्यायपालिका के बीच विवाद के केंद्र में निम्नलिखित मुद्दे थे–

- निजी संपत्ति के अधिकार का दायरा क्या है?
- मौलिक अधिकारों को सीमित, प्रतिबंधित और समाप्त करने की संसद की शक्ति का दायरा क्या है?
- संसद द्वारा संविधान संशोधन करने की शक्ति का दायरा क्या है ?
- क्या संसद नीति निर्देशक तत्वों को लागू करने के लिए ऐसे कानून बना सकती है जो मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधित करे?

जहाँ न्यायिक स्वतंत्रता को बनाए रखने की ज़रूरत पर कोई दो राय नहीं हो सकती ... वहीं हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को भी याद रखना जरूरी है। स्वतंत्रता के सिद्धांत को उस स्तर तक नहीं ले जाया जाना चाहिए जहाँ वह आस्था का स्थान ले ले। अन्यथा न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के काम भी अपने हाथ में ले लेने वाली एक अतिवादी संस्था की तरह काम करने लगेगी। न्यायपालिका का काम संविधान की व्याख्या करना या अधिकारों के बारे में चल रहे विवादों को हल करना है ...
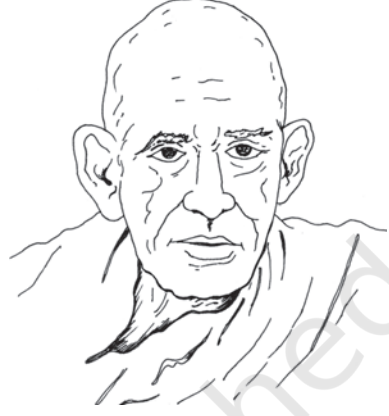
अलादि कृष्णास्वामी अय्यर
संविधान सभा के वाद-विवाद, खंड XI, पृष्ठ 837, 23 नवंबर 1949

1967 से 1973 के बीच यह विवाद काफी गहरा गया। भूमि-सुधार कानूनों के अतिरिक्त निवारक नज़रबंदी कानून, नौकरियों में आरक्षण संबंधी कानून, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी संपत्ति के अधिग्रहण संबंधी नियम और अधिग्रहीत निजी संपत्ति के मुआवज़े संबंधी कानून आदि ऐसे कुछ उदाहरण हैं जिन पर विधायिका और न्यायपालिका के बीच विवाद हुए।

1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया जो संसद और न्यायपालिका के संबंधों के नियमन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह केशवानंद भारती मुकदमे के रूप में प्रसिद्ध है। इस मुकदमें में न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान का एक मूल ढाँचा है और संसद सहित कोई भी उस मूल ढाँचे से छेड़-छाड़ नहीं कर सकता। संविधान संशोधन द्वारा भी इस मूल ढाँचे को नहीं बदला जा सकता। न्यायालय ने दो और काम किए। संपत्ति के अधिकार के विवादास्पद मुद्दे के बारे में न्यायालय ने कहा कि यह मूल ढाँचे का हिस्सा नहीं है और इसलिए उस पर समुचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है। दूसरा, न्यायालय ने यह निर्णय करने का अधिकार अपने पास रखा कि कोई मुद्दा मूल ढाँचे का हिस्सा है या नहीं। यह निर्णय न्यायपालिका द्वारा संविधान की व्याख्या करने की शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

इस निर्णय ने विधायिका और न्यायपालिका के बीच विवादों की प्रकृति ही बदल दी। जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की

सूची से 1979 में हटा दिया गया और इससे शासन के इन दो अंगों के बीच संबंधों की प्रकृति बदल गई।

फिर भी इन दोनों के बीच विवाद के कुछ बिंदु बचे हैं। जैसे क्या न्यायपालिका विधायिका की कार्यवाही का नियमन और उसमें हस्तक्षेप कर उसे नियंत्रित कर सकती है? संसदीय व्यवस्था में संसद को अपना संचालन खुद करने तथा अपने सदस्यों का व्यवहार नियंत्रित करने की शक्ति है। संसदीय-व्यवस्था में विधायिका को विशेषाधिकार के हनन का दोषी पाए जाने पर अपने सदस्य को दंडित करने का अधिकार है। जो व्यक्ति विधायिका के विशेषाधिकार हनन का दोषी हो क्या वह न्यायालय की शरण ले सकता है? सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध स्वयं सदन द्वारा यदि कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाती है तो क्या वह सदस्य न्यायालय से सुरक्षा प्राप्त कर सकता है? ये मुद्दे अभी भी सुलझ नहीं पाए हैं और दोनों के बीच विवाद का विषय बने रहते हैं। इसी प्रकार संविधान यह व्यवस्था करता है कि न्यायाधीशों के आचरण पर संसद में चर्चा नहीं हो सकती। लेकिन अनेक अवसरों पर संसद और राज्यों की विधान सभाओं में न्यायपालिका के आचरण पर अंगुली उठाई गई। इसी प्रकार न्यायपालिका ने भी अनेक अवसरों पर विधायिका की आलोचना की है और उन्हें उनके विधायी कार्यों के संबंध में निर्देश दिए हैं। विधायिका इसे संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत के उल्लंघन के रूप में देखती है।

इन मुद्दों से यह स्पष्ट होता है कि सरकार के किन्हीं दो अंगों के बीच संतुलन कितना संवेदनशील है और लोकतंत्र में सरकार के एक अंग का दूसरे अंग की सत्ता के प्रति सम्मान बरतना कितना ज़रूरी है।

अदालत हमें एक बार साफ-साफ क्यों नहीं बता देती कि आखिर संविधान के वे पहलू क्या हैं, जिन्हें 'मूल ढ़ाँचा' कहा जाता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

न्यायपालिका और संसद के बीच टकराव के मुद्दे रहे हैं-

- न्यायाधीशों की नियुक्ति
- न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते
- संसद के द्वारा संविधान संशोधन का दायरा
- संसद द्वारा न्यायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप

कार्टून बूझें

© आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

आखिरकार मैं बाइज़्ज़त बरी हो गया। डरावने सपने जैसा था यह सब कुछ। अब मैं कभी भी भ्रष्टाचार में शामिल नहीं होऊँगा। कसम से।

सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने में न्यायपालिका किस तरह सक्रिय रहती है?

निष्कर्ष

इस अध्याय में आपने अपनी लोकतांत्रिक संरचना में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन किया है। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच समय-समय पर उठने वाले विवादों के बावजूद न्यायपालिका की साख बढ़ी है। न्यायपालिका से कुछ और भी अपेक्षाएँ हैं। आम आदमी को आश्चर्य होता है कि किस आसानी से अनेक दोषी लोग न्यायपालिका से बेदाग बरी हो जाते हैं और कैसे धनी और दबंगों के असर में गवाह अपने बयान से मुकर जाते हैं। ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनके बारे में स्वयं न्यायपालिका भी चिंतित है।

इस अध्याय में आपने देखा कि भारत में न्यायपालिका बहुत शक्तिशाली संस्था है। इस शक्ति ने बड़े आश्चर्य और बहुत-सी आशाओं को जन्म दिया है।

भारतीय न्यायपालिका अपनी स्वतंत्रता के लिए भी जानी जाती है। अनेक निर्णयों के माध्यम से न्यायपालिका ने संविधान की नई व्याख्याएँ दीं और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की। जैसा कि हमने इस अध्याय में देखा लोकतंत्र वास्तव में विधायिका और न्यायपालिका के बीच एक अत्यंत संवेदनशील संतुलन पर आधारित है और इन दोनों को संविधान की सीमाओं के अंदर ही रहकर कार्य करना पड़ता है।

विधिक सेवा दिवस-2018

सत्यमेव जयते

विधिक सेवा प्राधिकरण आपके कानूनी अधिकारों के संरक्षण के लिए सदैव प्रतिबद्ध है।

विधिक सेवा प्राधिकरण के उद्देश्य-

1) निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना
2) कानूनी साक्षरता फैलाना
3) लोक अदालतों का आयोजन करना
4) विवाद निपटारे के लिए वैकल्पिक समाधानों को प्रोत्साहन देना
5) अपराध पीड़ित व्यक्तियों को मुआवज़ा देना

निःशुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए निम्न व्यक्ति पात्र हैं-

1) महिला और बच्चे
2) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्य
3) औद्योगिक कामगार
4) बड़े पैमाने पर प्राकृतिक/औद्योगिक आपदा, जातीय हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकंप से पीड़ित
5) विकलांग व्यक्ति
6) हिरासत में व्यक्ति
7) वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय 1 लाख रुपये से कम है या जो आय सीमा केन्द्र/राज्य सरकार अधिसूचित करती है।
8) मानव तस्करी या बेगार से पीड़ित

निःशुल्क कानूनी सेवा सभी दीवानी, फौजदारी, राजस्व व प्रशासनिक मुकदमों के लिए दी जाती है।

निःशुल्क कानूनी सेवाएँ प्रदान करने के लिए निम्नलिखित विधिक सेवा संस्थाएँ हैं-

1) राष्ट्रीय स्तर पर – राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण
2) राज्य स्तर पर – राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण
3) जिला स्तर पर – जिला विधिक सेवा प्राधिकरण
4) उप मंडल/तालुका स्तर पर – उप मंडल/तालुका विधिक सेवा समिति
5) उच्च न्यायालय स्तर पर – उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति
6) उच्चतम न्यायालय स्तर पर – सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति

निःशुल्क कानूनी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए आप अपनी निकटतम विधिक सेवा संस्था, फ्रंट ऑफ़िस (जिला न्यायालय परिसर/वैकल्पिक विवाद समाधान केन्द्र में), लीगल सर्विसिस क्लीनिक अथवा Nalsa online portal http://www.nalsa.gov.in/slams या टोल फ्री नम्बर 15100 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

National Legal Services Authority (NALSA)

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा)

12/11, जामनगर हाउस, शाहजहाँ रोड़, नई दिल्ली - 110011 वेबसाईट : www.nalsa.gov.in

प्रश्नावली

1. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के विभिन्न तरीके कौन-कौन से हैं? निम्नलिखित में जो बेमेल हो उसे छाँटें।
   (क) सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह ली जाती है।
   (ख) न्यायाधीशों को अमूमन अवकाश प्राप्ति की आयु से पहले नहीं हटाया जाता।
   (ग) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का तबादला दूसरे उच्च न्यायालय में नहीं किया जा सकता।
   (घ) न्यायाधीशों की नियुक्ति में संसद की दखल नहीं है।

2. क्या न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि न्यायपालिका किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है। अपना उत्तर अधिकतम 100 शब्दों में लिखें।

3. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए संविधान के विभिन्न प्रावधान कौन-कौन से हैं?

4. नीचे दी गई समाचार-रिपोर्ट पढ़ें और उनमें निम्नलिखित पहलुओं की पहचान करें।
   (क) मामला किस बारे में है?
   (ख) इस मामले में लाभार्थी कौन है?
   (ग) इस मामले में फरियादी कौन है?
   (घ) सोचकर बताएँ कि कंपनी की तरफ से कौन-कौन से तर्क दिए जाएँगे?
   (ङ) किसानों की तरफ से कौन-से तर्क दिए जाएँगे?

   सर्वोच्च न्यायालय ने रिलायंस से दहानु के किसानों को 300 करोड़ रुपए देने को कहा – *निजी कारपोरेट ब्यूरो, 24 मार्च 2005*

   मुंबई – सर्वोच्च न्यायालय ने रिलायंस एनर्जी से मुंबई के बाहरी इलाके दहानु में चीकू फल उगाने वाले किसानों को 300 करोड़ रुपए देने के लिए कहा है। चीकू उत्पादक किसानों ने अदालत में रिलायंस के ताप-ऊर्जा संयंत्र से होने वाले प्रदूषण के विरुद्ध अर्जी दी थी। अदालत ने इसी मामले में अपना फ़ैसला सुनाया है।

   दहानु मुंबई से 150 कि.मी. दूर है। एक दशक पहले तक इस इलाके की अर्थ व्यवस्था खेती और बागवानी के बूते आत्मनिर्भर थी और दहानु की प्रसिद्धि यहाँ के मछली-पालन तथा जंगलों के कारण थी। सन् 1989 में इस

इलाके में ताप-ऊर्जा संयंत्र चालू हुआ और इसी के साथ शुरू हुई इस इलाके की बर्बादी। अगले साल इस उपजाऊ क्षेत्र की फ़सल पहली दफ़ा मारी गई। कभी महाराष्ट्र के लिए फलों का टोकरा रहे दहानु की अब 70 प्रतिशत फ़सल समाप्त हो चुकी है। मछली पालन बंद हो गया है और जंगल विरल होने लगे हैं। किसानों और पर्यावरणविदों का कहना है कि ऊर्जा संयंत्र से निकलने वाली राख भूमिगत जल में प्रवेश कर जाती है और पूरा पारिस्थितिकी-तंत्र प्रदूषित हो जाता है। दहानु तालुका पर्यावरण सुरक्षा प्राधिकरण ने ताप-ऊर्जा संयंत्र को प्रदूषण-नियंत्रण की इकाई स्थापित करने का आदेश दिया था ताकि सल्फर का उत्सर्जन कम हो सके। सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्राधिकरण के आदेश के पक्ष में अपना फ़ैसला सुनाया था। इसके बावजूद सन् 2002 तक प्रदूषण-नियंत्रण का संयंत्र स्थापित नहीं हुआ। सन् 2003 में रिलायंस ने ताप-ऊर्जा संयंत्र को हासिल किया और सन् 2004 में उसने प्रदूषण-नियंत्रण संयंत्र लगाने की योजना के बारे में एक खाका प्रस्तुत किया। प्रदूषण-नियंत्रण संयंत्र चूँकि अब भी स्थापित नहीं हुआ था इसलिए दहानु तालुका पर्यावरण सुरक्षा प्राधिकरण ने रिलायंस से 300 करोड़ रुपए की बैंक-गारंटी देने को कहा।

5. नीचे की समाचार-रिपोर्ट पढ़ें और, चिह्नित करें कि रिपोर्ट में किस-किस स्तर की सरकार सक्रिय दिखाई देती है।
   (क) सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका की निशानदेही करें।
   (ख) कार्यपालिका और न्यायपालिका के कामकाज की कौन-सी बातें आप इसमें पहचान सकते हैं?
   (ग) इस प्रकरण से संबद्ध नीतिगत मुद्दे, कानून बनाने से संबंधित बातें, क्रियान्वयन तथा कानून की व्याख्या से जुड़ी बातों की पहचान करें।

सीएनजी - मुद्दे पर केंद्र और दिल्ली सरकार एक साथ

स्टाफ रिपोर्टर, द हिंदू, सितंबर 23, 2001 राजधानी के सभी ग़ैर-सीएनजी व्यावसायिक वाहनों को यातायात से बाहर करने के लिए केंद्र और दिल्ली सरकार संयुक्त रूप से सर्वोच्च न्यायालय का सहारा लेंगे। दोनों सरकारों में इस बात की सहमति हुई है। दिल्ली और केंद्र की सरकार ने पूरी परिवहन व्यवस्था को एकल ईंधन प्रणाली से चलाने के बजाय दोहरे ईंधन-प्रणाली से चलाने के बारे में नीति बनाने का फ़ैसला किया है क्योंकि एकल ईंधन प्रणाली खतरों से भरी है और इसके परिणामस्वरूप विनाश हो सकता है।

राजधानी के निजी वाहन धारकों ने सीएनजी के इस्तेमाल को हतोत्साहित करने का भी फ़ैसला किया गया है। दोनों सरकारें राजधानी में 0.05 प्रतिशत निम्न सल्फर डीजल से बसों को चलाने की अनुमति देने के बारे में दबाव डालेंगी। इसके अतिरिक्त अदालत से कहा जाएगा कि जो व्यावसायिक वाहन यूरो-दो

मानक को पूरा करते हैं उन्हें महानगर में चलने की अनुमति दी जाए। हालाँकि केंद्र और दिल्ली सरकार अलग-अलग हलफनामा दायर करेंगे लेकिन इनमें समान बिंदुओं को उठाया जाएगा। केंद्र सरकार सीएनजी के मसले पर दिल्ली सरकार के पक्ष को अपना समर्थन देगी।

दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित और केंद्रीय पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री श्री राम नाईक के बीच हुई बैठक में ये फैसले लिए गए। श्रीमती शीला दीक्षित ने कहा कि केंद्र सरकार अदालत से विनती करेगी कि डॉ. आरए मशेलकर की अगुआई में गठित उच्चस्तरीय समिति को ध्यान में रखते हुए अदालत बसों को सीएनजी में बदलने की आखिरी तारीख आगे बढ़ा दे क्योंकि 10,000 बसों को निर्धारित समय में सीएनजी में बदल पाना असंभव है। डॉ. मशेलकर की अध्यक्षता में गठित समिति पूरे देश के ऑटो ईंधन नीति का सुझाव देगी। उम्मीद है कि यह समिति छः माह में अपनी रिपोर्ट पेश करेगी।

मुख्यमंत्री ने कहा कि अदालत के निर्देशों पर अमल करने के लिए समय की ज़रूरत है। इस मसले पर समग्र दृष्टि अपनाने की बात कहते हुए श्रीमती दीक्षित ने बताया– सीएनजी से चलने वाले वाहनों की संख्या, सीएनजी की आपूर्ति करने वाले स्टेशनों पर लगी लंबी कतार की समाप्ति, दिल्ली के लिए पर्याप्त मात्रा में सीएनजी ईंधन जुटाने तथा अदालत के निर्देशों को अमल में लाने के तरीके और साधनों पर एक साथ ध्यान दिया जाएगा।
सर्वोच्च न्यायालय ने ... सीएनजी के अतिरिक्त किसी अन्य ईंधन से महानगर में बसों को चलाने की अपनी मनाही में छूट देने से इन्कार कर दिया था लेकिन अदालत का कहना था कि टैक्सी और ऑटो-रिक्शा के लिए भी सिर्फ सीएनजी इस्तेमाल किया जाए, इस बात पर उसने कभी ज़ोर नहीं डाला। श्री राम नाईक का कहना था कि केंद्र सरकार सल्फर की कम मात्रा वाले डीजल से बसों को चलाने की अनुमति देने के बारे में अदालत से कहेगी, क्योंकि पूरी यातायात व्यवस्था को सीएनजी पर निर्भर करना खतरनाक हो सकता है। राजधानी में सीएनजी की आपूर्ति पाईपलाइन के ज़रिए होती है और इसमें किसी किस्म की बाधा आने पर पूरी सार्वजनिक यातायात प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाएगी।

6. निम्नलिखित कथन इक्वाडोर के बारे में है। इस उदाहरण और भारत की न्यायपालिका के बीच आप क्या समानता अथवा असमानता पाते हैं?
सामान्य कानूनों की कोई संहिता अथवा पहले सुनाया गया कोई न्यायिक फ़ैसला मौजूद होता तो पत्रकार के अधिकारों को स्पष्ट करने में मदद मिलती। दुर्भाग्य से इक्वाडोर की अदालत इस रीति से काम नहीं करती। पिछले मामलों में उच्चतर अदालत के न्यायाधीशों ने जो फ़ैसले दिए हैं उन्हें कोई न्यायाधीश

उदाहरण के रूप में मानने के लिए बाध्य नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत इक्वाडोर (अथवा दक्षिण अमेरिका में किसी और देश) में जिस न्यायाधीश के सामने अपील की गई है उसे अपना फ़ैसला और उसका कानूनी आधार लिखित रूप में नहीं देना होता। कोई न्यायाधीश आज एक मामले में कोई फ़ैसला सुनाकर कल उसी मामले में दूसरा फ़ैसला दे सकता है और इसमें उसे यह बताने की ज़रूरत नहीं कि वह ऐसा क्यों कर रहा है।

7. निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अमल में लाए जाने वाले विभिन्न क्षेत्राधिकार; मसलन – मूल, अपीली और परामर्शकारी – से इनका मिलान कीजिए।
   (क) सरकार जानना चाहती थी कि क्या वह पाकिस्तान – अधिग्रहीत जम्मू-कश्मीर के निवासियों की नागरिकता के संबंध में कानून पारित कर सकती है।
   (ख) कावेरी नदी के जल विवाद के समाधान के लिए तमिलनाडु सरकार अदालत की शरण लेना चाहती है।
   (ग) बांध स्थल से हटाए जाने के विरुद्ध लोगों द्वारा की गई अपील को अदालत ने ठुकरा दिया।

8. जनहित याचिका किस तरह गरीबों की मदद कर सकती है?

9. क्या आप मानते हैं कि न्यायिक सक्रियता से न्यायपालिका और कार्यपालिका में विरोध पनप सकता है? क्यों ?

10. न्यायिक सक्रियता मौलिक अधिकारों की सुरक्षा से किस रूप में जुड़ी है? क्या इससे मौलिक अधिकारों के विषय-क्षेत्र को बढ़ाने में मदद मिली है?